ॐ

सुश्रुतसंहिता।

श्रीधन्वन्तरिभगवता समुपदिष्टा तच्छिष्येण सुश्रुतेन विरचिता।

सा च

आरोग्यसुधाकरसंपादकेन फर्रुखनगरनिवासिना पण्डितमुरलीधरशर्मणा राजवैद्येन सान्वय सटिप्पणीक-सपरिशिष्टया

भाषाटीकया सम्भूषिता।

तत्र

४-चिकित्सितस्थान ५ कल्पस्थानं च

टीकाकारेण पुनः संशोधितं

तदिदं स्थानद्वयं

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना

मुम्बय्यां

(खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन)

स्वकीये 'श्रीवेङ्कटेश्वर' (स्टीम्) मुद्रणयन्त्रालये

द्वितीयावृत्तौ-मुद्रयित्वा प्रकाशितम्।

संवत् १९६८, शके १८३३, सन् १९११

प्रस्तावना ।

प्रायः ऐसा अनुमानमें आता है कि धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष आदि समस्त कार्योंका मूल केवल शरीर ही है इसके आरोग्य रहनेसे सम्पूर्ण कार्य ठीक होते हैं इसीलिये नीतिशास्त्रज्ञोंने भी कहा है कि—"आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि" और भगवान् धन्वन्तरिजीने तो इसकी रक्षाके अर्थ आयुर्वेद और अनेक प्रकारकी औषधियां निर्माण करीही हैं इसलिये शरीरकी मुख्य रक्षा यथा है कि आरोग्य होना, यह वैद्यविद्याके अधीन है, यद्यपि इस वैद्यक विषयके बृहत् ग्रन्थ अनेक हैं कि, जिनमें प्रत्येक रोगोंके निदान और रोगानुसार उपयोगी औषधियाँ तथा और २ उपाय कथन किये हैं तथापि महात्मा सुश्रुतजीकी रची हुई यह 'सुश्रुतसंहिता' सब ग्रंथोंसे बढकर है, क्योंकि ऐसा कोई रोग नहीं कि जिसके दमनार्थ इसमें औषधियाँ नहीं कही हों और विचित्रता यह है कि, धनी व कंगाल सबके योग्य औषधियां इसमें कही हैं, इसीलिये कहा है कि—"सुश्रुतो न श्रुतो येन वाग्भटो न च वाग्भटः । चरको नालोकितो येन स वैद्यो यमकिंकरः" ॥

इस ऐसे उत्तम ग्रन्थको संस्कृत भाषामें होनेके कारण संस्कृतभाषानभिज्ञ सर्व संसारी जीवोंको विशेष लाभ नहीं होताथा इसलिये विचारोश कर सबके मुलभार्थ इस ग्रंथकी मनोहर व सर्वगुणसंपन्न भाषाटीका पंडितवर श्रीमुरलीधरजी राजवैद्यद्वारा निर्माण कराय यह ग्रंथ भाषाटीकाविभूषित मुद्रित किया है ।

ग्रंथबाहुल्यता होनेसे इसके भिन्न भिन्न ४ भाग मुद्रित किये हैं जिनमेंसे यह तृतीय भाग है इसमें चिकित्सित और कल्प दो स्थान हैं जिनमेंसे चिकित्सितस्थानमें तो सम्पूर्ण प्रकारके रोगोंकी चिकित्सायें अनेक २ प्रकारसे वर्णित हैं और कल्पस्थानमें वे अनेक प्रकारके सुंदर कल्प कहे हैं कि जिनके करनेसे मनुष्य वृद्धताको त्यागकर पुनः युवा होजाता है ।

संसारमें विदितगुणवाले अत्युत्तम इस ग्रन्थकी विशेष प्रशंसा नहीं करनेमें क्योंकि सागरका जल कभी गागरमें समाता है ? इसलिये देखनेसेही इसके गुण विदित होंगे, आशा है कि वैद्यविद्यारसिक महाशय शीघ्रही इस ग्रंथको ग्रहणकर विचारपूर्वक इसके द्वारा औषध प्रयोग कर अनेकानेक लाभ उठा हमारे परिश्रमको सफल करेंगे ।

निवेदनकर्त्ता -

खेमराज श्रीकृष्णदास, मालिक "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम मुद्रणयन्त्रालय-मुम्बई

॥ श्रीः ॥

अथ सुश्रुतसंहिताचिकित्सितस्थान-

विषयाऽनुक्रमणिका ।



विषय — पृष्ठांक

अथाष्टादशोऽध्यायः १८

अथैकोनविंशोऽध्यायः १९.

अथ विंशतितमोऽध्यायः २०.

अथैकविंशोऽध्यायः २१

अथ द्वाविंशतितमोऽध्यायः २२

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः २३.

अथ चतुर्विंशोऽध्याय. २४.

अथाष्टादशोऽध्यायः १८

अथैकोनविंशोऽध्यायः १९

अथ विंशतितमोऽध्यायः २०

अथ पंचविंशतितमोऽध्यायः २५,

अथ षड्विंशतितमोऽध्यायः २६,

अथ सप्तविंशतितमोऽध्यायः २७

अथाष्टाविंशतितमोऽध्यायः २८

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः २९

अथ त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३०

अथैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३१

अथ सप्तविंशतितमोऽध्यायः २७

अथाष्टाविंशतितमोऽध्यायः २८

अथैकोनत्रिंशोऽध्यायः २९

अथ त्रिंशत्तमोऽध्यायः ३०

अथैकत्रिंशत्तमोऽध्यायः ३१

अथ पञ्चविंशतितमोऽध्यायः २५,

अथ षड्विंशतितमोऽध्यायः २६,

॥ श्रीः ॥

अथ सुश्रुतसंहिताकल्पस्थान-

विषयाऽनुक्रमणिका ।



इति सुश्रुतसंहिताकल्पस्थानविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।

॥ श्रीः ॥

अथ सुश्रुतसंहिता ।

सान्वयभाषाटीकासहिता ।

चिकित्सितस्थानम् ४.

प्रथमोऽध्यायः १

अथातो द्विव्रणीयचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

शारीरक स्थानके अनंतर अब चिकित्सितस्थानका प्रारंभ करते हे इसमें प्रथम द्विव्रणीय अर्थात् दोनों प्रकारके शारीर ओर आगंतुक व्रणोंकी चिकित्साका व्याख्यान करते हे ॥

दो प्रकारके व्रण ।

द्वौ व्रणौ भवतः शारीर आगंतुकश्चेति । तयोः शारीरः पवनपित्तकफशोणितसन्निपातनिमित्तः । आगंतुरपि पुरुषपशुपक्षिव्यालसरीसृपप्रपतनपीडनप्रहाराग्निक्षारविषतीक्ष्णौषधशकलकपालशृंगचक्रेषुपरशुशक्तिकुन्ताद्यायुधाभिघातनिमित्तः ॥ १ ॥

व्रण दो प्रकारके होते हे एक शारीरक, दूसरे आगंतुक । इनमेंसे जो वायु,पित्त, कफ, रुधिर तथा सन्निपातके कारण शरीरहीमेंसे उत्पन्न हो उसे शारीरक व्रण कहते- हे । और जो मनुष्य, पशु (बैल, घोडे आदि), पक्षी (गिद्ध, शुक आदि), व्याल (सिंह, वृक आदि) तथा सरीसृप (सर्प, बिच्छू आदि) के आघात-चोट लगने, फाटने आदिसे तथा ऊंचेपरसे गिरने, दबजाने और लकडी आदिके प्रहारसे तथा अग्निके जलने, क्षार (तेजाब) लगनेसे, विषके स्पर्शादिसे तथा तीक्ष्ण औषध (भिलावे आदि) के लगनेसे, शकल अर्थात् बांसकी पच्चट, कांचका टुकडा आदि

(पाक्य १) द्वौ व्रणौ अधिकृत्य कृत द्विव्रणीयम् । चिकित्सितं विकारप्रतीकार । पक्षे स्वनामप्रसिद्ध आयुधविशेष तथा रथादीनां चक्रं च । आदिशब्देन खड्गादयो ग्राह्या ॥

पगाड (टकरा मारने) सींग और चक्र (पहियेकी रगड़), इषु (तीर) तथा परशु (कुल्हाड़ा), शक्ति (बरछी) कुन्त (तोमर) आदि शस्त्रोंकी चोट लगनेके कारणसे उत्पन्न हो उसे आगन्तुक व्रण कहते हैं ॥ १ ॥

तत्र तुल्ये व्रणसामान्ये द्विकारणोत्थानप्रयोजनसामर्थ्याद्द्विव्रणीय इत्युच्यते ॥ २ ॥

व्रणमात्र सामान्यतासे तुल्य होनेपरभी दो कारणोंसे उत्पन्न होते हैं इस प्रयोजनसे "द्विव्रणीय" ऐसा कहा जाता है ॥ २ ॥

आगन्तुक व्रणमें तात्कालिक विधि ।

सर्वस्मिन्नेवाऽऽगन्तुव्रणे तत्कालमेव क्षतोष्मणः प्रशमनार्थं पित्तवच्छीतक्रियावचारणविधिर्विशेषः सन्धानार्थं च मधुघृतप्रयोग इत्येतद्द्विकारणोत्थानप्रयोजनमुत्तरकालं तु दोषोपप्लवविशेषाच्छारीरवत्प्रतीकारः ॥ ३ ॥

सब प्रकारके आगन्तुक व्रणोंमें (आघात होनेही) तत्काल घावकी गरमीके मिटनेकी शांतिके लिये पित्तकी शांतिके समान शीतल क्रियाका आचरण करना विशेषविधि है (अर्थात् ताजे आगन्तुक क्षतपर उसी समय ठंढा पानी डालना, भीगा कपड़ा लपेटना आदि उचित है) और घावके भरनेके लिये शहद और घृतका उपयोग करे यह दोनों प्रकारके व्रणोंमें योजना करसकते हैं और आगन्तुक व्रण भी अधिक दिनका होजाय (पकजाय, सड़जाय अच्छा न हो) तो फिर दोषोंकी उल्बणताके भेदसे शारीरिक व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

व्रणमें दोष भेद ।

दोषोपप्लवविशेषः पुनः समासतः पञ्चदशप्रकारः प्रसरणसामर्थ्यात् यथोक्तो व्रणप्रश्नाधिकारे [illegible] ॥ ४ ॥

व्रणके सामान्य विशेष लक्षण।

तस्य लक्षणं द्विविधं सामान्यं वैशेपिकश्च तत्र सामान्यं रुक्। 'व्रण' गात्रविचूर्णने। व्रणतीति व्रण· विशेपलक्षण पुनर्वातादि-लिंगविशेप· ॥ ५ ॥

व्रणमात्रके लक्षण दो प्रकारके है सामान्य और विशेप। जिसमे सामान्य लक्षण तो पीडा होनाही है। 'व्रण' धातु गात्रके विचूर्णन अर्थमें हे उसमे व्रण शब्द (क्षत-वाचक) बनता है इसके विशेप लक्षण वात-पित्त-कफ--रुधिर-वातपित्त-वात-कफ आदि भेदसे (एक एक दोपके तथा दो दो दोप मिलकर और तीन तीन दोप मिलकर तथा चारों दोप मिलकर) पद्रह प्रकारके अथवा शुद्ध व्रण सहित १६ प्रकारके होते है जिन्हे जुदा जुदा वर्णन करते है ॥ ५ ॥

वातादिभेदसे १५ प्रकारके व्रणलक्षण।

तत्र श्यावारुणाभस्तनुः शीतपिच्छलाल्पस्रावी रूक्षश्चटचटायन-शीलः स्फुरणायामतोदभेदवेदनाबहुलो निर्मांसश्चेति वातात्॥६॥ क्षिप्रज पीतनीलाभकिंशुकोदकाभोष्णस्रावी दाहपाकरागवि-कारी पीतपिडिकाजुष्टश्चेति पित्तात् ॥ ७ ॥

रूखा, सुरखी लिये, छोटा जो व्रण हो तथा ठढा, गाढा और थोडा जिसमे स्राव हो, रूखा हो, जिसमे चटचटीसी उठे और स्फुरायमान हो, जिसमे अग मुड नहीं, जिममे चीस और भेदन करनेकासा दु'ख और पीडा अधिक हो तथा निर्मांस हो उसे वातज व्रण जानो ॥ ६ ॥ जो शीघ्र उत्पन्न हो और बढे, जिसमें पीलापन और नीलापन हों, जिसमेंसे केसूके फूलके रग जेसा गरम स्राव हो, जिसमें जलन और पकानेकीसी पीडा और राग (चमक) इत्यादि विकार हों और आसपासमे पीली २ फुन्सिया हों उसे पित्तज व्रण जानो ॥ ७ ॥

प्रततकंडूबहुल स्थूलो घन· स्तब्धशिरास्नायुजालावनत· कठिन पाडुवभासो मदवेदन शुक्लशीतसान्द्रपिच्छलास्रावी गुरु-श्चेति कफात् ॥ ८ ॥ प्रवालदलनिचयप्रकाश कृष्णस्फोटपिटि-काजालोपचितस्तुरगस्थानगंध सवेदनो धूमायनशीलो रक्त-स्रावी पित्तलिंगश्चेति रक्तात् ॥ ९ ॥

जो फैला हुवा हो, ऊचा हो, जिसमे खाज अधिक हो, मोटा हो कडा हो, खिची हुई रगो और नसोंके जालमे व्याप्त हो, कठोर हो, जिसमें पीलापन झलके, थोडी २

कपाल (टपरा खोपरी), सांग और चक्र (पहियेकी रगड़), इषु (तीर) तथा परशु (कुल्हाड़ा), शक्ति (बरछी), कुन्त (तोमर) आदि शस्त्रोंकी चोट लगनेके कारणसे उत्पन्न हो उसे आगन्तुक व्रण कहते हैं ॥ १ ॥

तत्र तुल्ये व्रणसामान्ये द्विकारणोत्थानप्रयोजनसामर्थ्याद्द्विव्रणीय इत्युच्यते ॥ २ ॥

व्रणमात्र सामान्यतासे तुल्य होनेपरभी दो कारणोंसे उत्पन्न होते हैं इस प्रयोजनसे ' द्विव्रणीय ' ऐसा कहा जाता है ॥ २ ॥

आगन्तुक व्रणमें तात्कालिक विधि ।

सर्वस्मिन्नेवाऽऽगन्तुव्रणे तत्कालमेव क्षतोष्मणः प्रशमनार्थं पित्तवच्छीतक्रियावधारणविधिविशेषः संधानार्थं च मधुघृतप्रयोग इत्येतद्द्विकारणोत्थानप्रयोजनमुत्तरकालं तु दोषोपप्लवविशेषाच्छारीरवत्प्रतीकार ॥ ३ ॥

सब प्रकारके आगन्तुक व्रणोंमें (आघात होतेही) तत्काल घावकी गरमी शान्तिके लिये पित्तकी शान्तिके समान शीतल क्रियाका अवधारण करना विशेषविधि है (अर्थात् ताजे आगन्तुक क्षतपर उसी समय ठंढा पानी डालना, भीगा कपड़ा लपेटना आदि उचित है) और घावके भरनेके लिये शहद और घृतका उपयोग करे यह दोनों प्रकारके व्रणोंमें योजना करसकते हैं और आगन्तुक व्रण भी अधिक दिनका होजावे (पकजावे, सड़जावे अच्छा न हो) तो फिर दोषोंकी उल्बणताके भेदसे शारीरिक व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

व्रणमें दोष भेद ।

दोषोपप्लवविशेष पुन समासेन पञ्चदशप्रकार प्रसरणसामर्थ्याद्यथोक्तो व्रणप्रश्नाधिकारे शुद्धश्चैकः षोडशप्रकार इत्येके ॥ ४ ॥

दोषों (वायु, पित्त, कफ और रुधिर इन चारों) से उपप्लव (उत्पात) के जो पन्द्रह भेद प्रसरणकी सामर्थ्यसे होते हैं व व्रणप्रश्नाधिकार (सूत्रस्थानके व्रणप्रश्न अध्याय) में वर्णन होचुके हैं इनके अतिरिक्त सर्व दोषोंसे रहित शुद्ध व्रण एक सोलहवां भेद कई आचार्य एक और मानते हैं ॥ ४ ॥

(वास्तव) सूत्रस्थानके २१ वें अध्यायमें दोषोंके प्रसरणादिमें १५ भेद कहे हैं जिसमें किसी दोषका प्रकोप नहीं कहा है परन्तु सिद्धान्तिक स्थानके श्लोक वाक्यसे यह अनर्थ (भेद) नहीं किन्तु महर्षि धन्वन्तरिजीका ही ......

व्रणके सामान्य विशेष लक्षण।

तस्य लक्षणं द्विविधं सामान्यं वैशेषिकश्च तत्र सामान्यं रुक्। 'व्रण' गात्रविचूर्णने। व्रणतीति व्रण' विशेपलक्षण पुनर्वातादिलिंगविशेषः॥ ५॥

व्रणमात्रके लक्षण दो प्रकारके है सामान्य और विशेप। जिसमे सामान्य लक्षण तो पीडा होनाही है। 'व्रण' धातु गात्रके विचूर्णन अर्थमें है उससे व्रण शब्द (क्षतवाचक) बनता है इसके विशेप लक्षण वात-पित्त-कफ—रुधिर-वातपित्त-वात-कफ आदि भेदसे (एक एक दोपके तथा दो दो दोप मिलकर और तीन तीन दोप मिलकर तथा चारों दोप मिलकर) पन्द्रह प्रकारके अथवा शुद्ध व्रण सहित १६ प्रकारके होते है जिन्हे जुदा जुदा वर्णन करते है॥ ५॥

वातादिभेदसे १५ प्रकारके व्रणलक्षण।

तत्र श्यावारुणाभस्तनु शीतपिच्छलाल्पस्रावी रूक्षश्चटचटायनशीलः स्फुरणायमतोदभेदवेदनाबहुलो निर्मांसश्चेति वातात्॥६॥ क्षिप्रज' पीतनीलाभकिंशुकोदकाभोष्णस्रावी दाहपाकरागविकारी पीतपिडिकाजुष्टश्चेति पित्तात्॥ ७॥

रूदा, सुरखी लिये, छोटा जो व्रण हो तथा ठढा, गाढा और थोडा जिसमे स्राव हो, रूखा हो, जिसमें चटचटीसी उठे और स्फुरायमान हो, जिसमे अग सुडे नहीं, जिसमे चीम और भेदन करनेकासा दु ख और पीडा अधिक हो तथा निर्मास हो उसे वातज व्रण जानो॥ ६॥ जो शीघ्र उत्पन्न हो और बढे, जिसमें पीलापन और नीलापन हों, जिसमेंसे केसूके फूलके रग जैसा गरम स्राव हो, जिसमे जलन और पकानेकीसी पीडा और राग (चमक) इत्यादि विकार हों और आसपासमे पीली २ फुन्सिया हों उसे पित्तज व्रण जानो॥ ७॥

प्रततचडकडूबहुल स्थूलो घन स्नब्धशिरास्नायुजालावतत' कठिन पांडवभासो मदवेदन शुक्लशीतसान्द्रपिच्छलास्रावी गुरुश्चेति कफात्॥ ८॥ प्रवालदलनिचयप्रकाश कृष्णस्फोटपिडिकाजालोपचितस्तुरगस्थानगन्ध सवेदनो धूमायनशीलो रक्तस्रावी पित्तलिंगश्चेति रक्तात्॥ ९॥

जो फैला हुआ हो, ऊचा हो, जिसमे खाज अधिक हो, मोटा हो कडा हो, खिची हुई रगो और नसोंके जालमे व्याप्त हो, कठोर हो, जिसमें पीलापन झलके, थोडी २

कपाल (ठीकरा खोपरी), सींग और चक्र (पहियेकी तरह), इषु (बाण) तथा परशु (कुल्हाडा), शक्ति (बरछी), कुंत (तोमर) आदि शस्त्रोंकी चोट लगनेके कारणसे उत्पन्न हो उसे आगन्तुक व्रण कहते हैं ॥ १ ॥

तत्र तुल्ये व्रणसामान्ये द्विकारणोत्थानप्रयोजनसामर्थ्याद्द्विव्रणीय इत्युच्यते ॥ २ ॥

व्रणमात्र सामान्यतासे तुल्य होनेपरभी दो कारणोंसे उत्पन्न होते हैं इस प्रयो-जनसे "द्विव्रणीय" ऐसा कहा जाता है ॥ २ ॥

आगन्तुक व्रणमें तात्कालिक विधि ।

सर्वस्मिन्नेवाऽऽगन्तुव्रणे तत्कालमेव क्षतोष्मणः प्रशमनार्थं पित्तवच्छीतक्रियावधारणविधिविशेषः सन्धानार्थं च मधुघृतप्रयोग इत्येतद्द्विकारणोत्थानप्रयोजनमुत्तरकालं तु दोषोपप्लवविशेषाच्छा-रीरवत्प्रतीकारः ॥ ३ ॥

सब प्रकारके आगन्तुक व्रणोंमें (आघात होतेही) तत्काल घावकी गरमी दूर करने-की शांतिके लिये पित्तकी शांतिके समान शीतल क्रियाका अवधारण करना विशेष-विधि है (अर्थात ताजे आगन्तुक क्षतपर उसी समय ठंडा पानी डालना, भीगा कपडा लपेटना आदि उचित है) और घावके भरनेके लिये शहद और घृतका उपयोग करें यह दोनों प्रकारके व्रणोंमें योजना करसकते हैं और आगन्तुक व्रण भी अधिक दिनका होजाय (कदाचित, सहजमें अच्छा न हो) तो फिर दोषोंकी उल्वणताके भेदसे शारीरक व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

व्रणमें दोष भेद ।

दोषोपप्लवविशेषः पुनः समासतः पञ्चदशप्रकारः प्रसरणसामर्थ्या-द्यथोक्तो व्रणप्रश्नाधिकारे शुद्धश्चैकः षोडशप्रकार इत्येके ॥ ४ ॥

दोषों (वायु, पित्त, कफ और रुधिर इन चारों) के उपद्रव (उत्पात) से जो पन्द्रह भेद प्रसरणकी सामर्थ्यसे होतेहैं वे व्रणप्रश्नाधिकार (सूत्रस्थानके इक्कीसवें अध्याय) में वर्णन होचुके हैं इनके अतिरिक्त सब दोषोंसे रहित शुद्ध व्रण एक सोलहवां भेद कई आचार्य एक और मानते हैं ॥ ४ ॥

(भावार्थ) सुश्रुताचार्यने २१ वे अध्यायमें दोषोंके प्रसरणमें १५ भेद कहे हैं जिसको किसी टीकाकारने आगे कहा है परन्तु विधिविस्तार स्थानमें अर्थात चरकमें यह अर्थ (ज्ञात) नहीं किन्तु सर्वत्र अस्थिरित ही मालूम सिद्ध होताहै ॥